osite www.jaypeebrothers.com, for detailed information on ayurveda books, visit our website www.jaypeebrothers.com

# संहिता अध्ययनम्

आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा

JAYPEE

# विषय सूची/पाठ्यक्रम

**विषय- संहिता परिचय** 1-37

क. संहिता परिभाषा, प्रकार नामकरण शैली, व्याख्या
ख. संहिता (बृहत्त्रयी) का संक्षिप्त परिचय, इनकी व्याख्या एवं व्याख्याकार, इनके प्रणेता आचार्य
ग. तन्त्रयुक्ति, तन्त्र गुण, तन्त्र दोष
घ. बृहत्त्रयी रचना शैली एवं भाषा शैली
च. अनुबन्ध चतुष्टय
छ. अष्ट प्रश्न
ज. त्रिविध ज्ञानोपाय

**अष्टांग हृदय संहिता सूत्र स्थान अध्याय 1 से 15**

**अध्याय 1 सूत्र आयुष्कामीय** 39-56

1. अष्टांग हृदय परिचय
2. दोष, धातु, मल परिचय
3. अग्नि कोष्ठ स्वरूप
4. रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव गुण परिचय
5. रोग आरोग्य स्वरूप
6. रोग आतुर परीक्षा
7. देश एवं काल परिचय
8. चिकित्सा भेद
9. पाद चतुष्टय स्वरूप
10. व्याधि साध्यासाध्यत्व

**अध्याय 2 दिनचर्या** 57-70

1. दिनचर्या-विहार
2. शुद्धि नियम
3. धर्म पालन एवं सद्वृत पालन
4. अध्याय के प्रमुख श्लोक

**अध्याय 3 ऋतुचर्या** 71-84

1. षड़ऋतु वर्णन (उत्तरायण एवं दक्षिणायन सहित ऋतु वर्गीकरण)
2. ऋतुचर्या (षड़चर्या वर्णन)
3. शोधन चिकित्सा
4. ऋतु सन्धि
5. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 4 रोगानुत्पादनीय** 85–94

1. अधारणीय वेग एवं चिकित्सा
2. धारणीय वेग
3. शोधन चिकित्सा
4. हिताहार विहार सेवन
5. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 5 द्रव द्रव्यादि विज्ञानीय** 95–111

1. जलवर्ग
2. दुग्ध वर्ग
3. ईक्षु वर्ग
4. मधु वर्ग
5. तैल वर्ग
6. मूत्र वर्ग
7. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 6 अन्न स्वरूप विज्ञानीय** 113–153

1. शूक धान्य-सामान्य गुण
2. शिम्बी धान्य-सामान्य गुण
3. मांस के सामान्य गुण
4. शाक के सामान्य गुण
5. फल के सामान्य गुण
6. कृतान्न वर्ग-सामान्य गुण
7. औषधियों के सामान्य गुण

**अध्याय 7 अन्नरक्षा** 155–168

1. राजवैद्य की स्थिति
2. सविष अन्न के लक्षण
3. सविष अन्न औषध
4. विरूद्ध आहार
5. सात्मीकरण कर्म
6. आहार-निद्रा-ब्रह्मचर्य
7. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 8 मात्राशितीय** 169–181

1. आहार मात्रा
2. हीन-मात्रा, अति मात्रा भोजन दोष
3. अलसक विसूचिका
4. अपतर्पण चिकित्सा
5. अजीर्ण के प्रकार

6. भोजन सम्यक योग
7. कुक्षि विभाग
8. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 9 द्रव्यादि विज्ञानीय** 183–193

1. द्रव्य का श्रेष्ठत्व
2. द्रव्यों का पंचभौतिकत्व
3. पांचभौतिक द्रव्य नाम, गुण
4. द्रव्यों का वीर्य, विपाक प्रभाव सिद्धान्त
5. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 10 रसभेदीय** 195–205

1. षड़रसों की उत्पत्ति
2. षड़ रस परिचय
3. षड़रस, कर्म, गुण एवं अतियोग लक्षण
4. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 11 दोषादि विज्ञानीयम्** 207–222

1. दोष, धातु, मलों का महत्व
2. दोष, धातु, मलों का प्राकृत वैकृत कर्म
3. दोष, धातु, मल, आश्रया आश्रयीभाव
4. दोषधातु, मल, वृद्धि, क्षय सिद्धान्त
5. अग्नि वर्णन
6. रोगोत्पत्ति के सामान्य निदान क्रिया सिद्धान्त
7. ओजस् वर्णन
8. वृद्धि क्षय भेषज
9. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 12 दोष भेदीय** 223–240

1. दोष एवं दोष भेदीय (प्रकार)
2. दोष चय, प्रकोप, प्रशम के कारण
3. रोग के त्रिविध कारण
4. त्रिविध रोग मार्ग
5. आतुर परीक्षा भाव
6. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 13 दोषोपक्रमणीय** 241–253

1. त्रिदोष उपकर्म
2. शुद्ध अशुद्ध चिकित्सा लक्षण
3. दोष गति
4. आम अवधारणा (सामान्य विचार)

5. दशविध औषधकाल
6. प्रमुख श्लोक
7. लंघन पर वर्तमान अनुसंधान ओटोफैगी प्रक्रिया

**अध्याय 14 द्विविधोपक्रमणीय** 255–264

1. लंघन एवं बृंहण उपचार अवधारणा
2. शोधन एवं शमन उपचार अवधारणा
3. अतिस्थौल्य एवं अतिकृश (सामान्य विचार)
4. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 15 शोधनादि गण संग्रह** 265–274

**चरक संहिता सूत्र स्थान 1 से 12**

**अध्याय 1 दीर्घञ्जीवितीय** 275–290

1. आयुर्वेदावतरण
2. रोग का धर्मादि चतुवर्ग प्राप्ति में बाधकता
3. त्रिसूत्र आयुर्वेद
4. षड् पदार्थ वर्णन
5. आयुर्वेद का लक्षण तथा प्रयोजन
6. आयु का लक्षण एवं पर्याय
7. सामान्य विशेष के लक्षण
8. त्रिदण्ड
9. रोगों के त्रिविध कारण
10. व्याधि का आश्रय तथा आरोग्य के कारण
11. आत्मा के लक्षण
12. शारीर एवं मानस दोष वर्णन
13. साध्यासाध्य विकार चिकित्सा
14. रस वर्णन
15. द्रव्य भेद
16. औषध नाम, रूप, उपयोग ज्ञान
17. चिकित्सा का कर्तव्य
18. भिषगुत्तम के लक्षण
19. श्रेष्ठ भैषज तथा चिकित्सक
20. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 2 अपामार्ग** 291–295

1. शिरोविरेचन द्रव्य एवं प्रयोग निर्देश
2. वमन द्रव्य एवं प्रयोग निर्देश
3. विरेचन द्रव्य एवं प्रयोग निर्देश
4. अनुवासन द्रव्य एवं प्रयोग निर्देश

5. अष्टविंशति यवागू
6. पंचकर्म महत्व एवं वैद्य के गुण
7. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 3 आरग्वधीय** 297–300

1. बत्तीस सिद्धचूर्ण, प्रदेह वर्णन एवं प्रयोग निर्देश

**अध्याय 4 षड़विरेचन शताश्रितीय** 301–316

1. षड़ विरेचन आश्रय
2. पंचकषाय योनि
3. पंचविध कषाय कल्पना
4. पंच कषाय शतानि (पचास महाकषाय एवं पांच सो द्रव्य)

**अध्याय 5 मात्राशितीय** 317–330

1. मात्रावत् आहार
2. आहार स्वरूप (गुरु लघु)
3. आहार मात्रा
4. मात्रावत आहार फल
5. आहार सेवन विधान सिद्धान्त
6. स्वस्थवृत्त
7. अंजन
8. धूमपान
9. नस्य
10. दन्तधावन
11. जिह्वा निर्लेखन
12. गण्डूष
13. अभ्यंग
14. परिमार्जन
15. वस्त्र, गन्ध माल्यादि धारण
16. शौच विधि
17. क्षौर कर्म
18. पादत्राण धारण
19. छत्र धारण
20. प्रमुख श्लोक
21. दिनचर्या का सर्केडियन रिद्म बनाने में भूमिका
22. अभ्यंग की ऊतक पोषण में भूमिका
23. गुण युक्त भोजन यान्त्रिक प्रक्रिया से संतुष्टी (सौहित्य मात्रा)

**अध्याय 6 तस्याशितीय** 331–338

1. संवत्सर विभाग
2. विसर्गकाल

3. आदान काल
4. षड्ऋतु विवेचन एवं चर्या
5. हंसोदक
6. सात्म्य
7. प्रमुख श्लोक
8. कर्क संक्रान्ति (उत्तरायण) एवं मकर संक्रान्ति दक्षिणायन होने का कारण (एवं 21 मार्च एवं 23 सितम्बर दिन बड़े होने के कारण, पृथ्वी की सूर्य परिक्रमा)

**अध्याय 7 नवेगान्धारणीय** **339–349**

1. अधारणीय धारणीय वेग लक्षण एवं चिकित्सा
2. व्यायाम
3. अहित सेवन एवं वर्ज्य विधि
4. आगन्तुज एवं प्रज्ञापराध जन्यरोग एवं चिकित्सा
5. प्रमुख श्लोक
6. प्रकृति वर्गीकरण (अनुसंधान)

**अध्याय 8 इन्द्रियोपक्रमणीय** **351–359**

1. इन्द्रिय संख्या, इन्द्रिय द्रव्य, अधिष्ठान, अर्थ (शब्दादि) बुद्धि वर्णन
2. मन के लक्षण
3. मन का एकत्व
4. सात्विक, राजस एवं तामस मन
5. इन्द्रिय पंचपंचक
6. अध्यात्म द्रव्य, गुण संग्रह
7. महाभूत एवं इन्द्रिय सम्बन्ध
8. प्रकृति विकृति हेतु
9. सद्वृत अनुष्ठान
10. हेतुचतुष्टय
11. अनुक्त सदवृत
12. प्रमुख श्लोक
13. माइक्रोब्रायोम संरचना एवं मानसिक स्वास्थ्य

**अध्याय 9 खुड्डाक चतुष्पाद** **361–372**

1. चिकित्सा चतुष्पाद
2. रोगारोग्य लक्षण
3. चिकित्सा लक्षण
4. वैद्य, द्रव्य, परिचारक, आतुर गुण
5. वैद्य का प्रधानत्व
6. अयोग्य चिकित्सा दोष
7. सद्वैद्य लक्षण

8. वैद्य कर्तव्य
9. वैद्य वृत्ति
10. प्रमुख श्लोक
11. चिकित्सकीय विद्यार्थी की मृदु कौशल प्रगति, चिकित्सकीय आचार सिद्धान्त, चिकित्सकीय शिक्षा में भावात्मक बुद्धिमता

**अध्याय 10 महाचतुष्पाद** **373–375**

1. चतुष्पाद भेषज युक्तियुक्त आरोग्य वृत्ति है (आत्रेय)
2. भेषज अभेषज तुल्यत्व प्रतिपादन (मैत्रेय)
3. आत्रेय का समाधानात्मक निष्कर्ष
4. परीक्ष्य कारिणोहि कुशला भवन्ति
5. चिकित्सा सूत्र
6. चिकित्सा में यशोलाभ का कारण
7. असाध्य रोग चिकित्सा करने से हानि
8. साध्य असाध्य (वर्गीकरण)
9. सुख साध्य लक्षण
10. कृच्छ्रसाध्य लक्षण
11. याप्य लक्षण
12. प्रत्याख्येय लक्षण
13. रोग रोगी परीक्षा संक्षिप्त ज्ञान
14. मिथ्या ज्ञान (मैत्रेय बुद्धि)
15. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 11 त्रिस्त्रैषणीय** **377–388**

1. त्रिविध ऐषणा-प्राणैषणा, धनैषणा
2. परलोकैषणा
3. चतुर्विध परीक्षा
4. चतुर्विध परीक्षा से पुनर्जन्म सिद्धि
5. त्रयोपस्तम्भ
6. त्रिविधबल
7. त्रिविध आयतन
8. अर्थ कर्म एवं काल का हीन मिथ्याति योग
9. त्रिविध रोग
10. मानस रोग चिकित्सा
11. त्रिविध रोग मार्ग
12. त्रिविध वैद्य
13. उपसंहार में अष्टत्रिक
14. प्रमुख श्लोक

**अध्याय 12 वात कलाकलीय** **389-392**

1. वात गुण
2. वात के गुण कर्म विषय विभिन्न आचार्यों के विचार
3. वायु प्रकोप प्रशम कर्म
4. अकुपित कुपित वात कर्म
5. वात दोष का चिकित्सकीय कर्म
6. कुपित कफपित्त कर्म
7. त्रिदोष पर आत्रेय का समन्वयात्मक दृष्टिकोण
8. प्रमुख श्लोक

अध्याय 1

# प्रथमोऽध्यायः
# आयुष्कामीय अध्याय का सारांश

मंगल चरण के पश्चात् अष्टाङ्ग हृदय के लेखक ने आरोग्य प्राप्ति के सूत्रों का इस अध्याय में वर्णन किया है इसीलिए सुखायु की प्राप्ति कराने वाले इस अध्याय का नाम आयुष्कामीय किया गया।

आयुर्वेद अवतरण का उपदेश पितामह ब्रह्मा से प्रारम्भ कर आत्रेय एवं अग्निवेश तक किया। आयुर्वेद के आठ अंग, शारीरिक तीन दोष, वात, पित्त एवं कफ, मानस दोष रज एवं तम के साथ इनके स्थान, लक्षण, भोजन, आयु, दिन एवं रात्रि में इनकी स्थिति का वर्णन किया है, अग्नि एवं कोष्ठ पर दोषों का प्रभाव, प्रकृति निर्माण में दोषों की कारणता, दोषों के पृथक-पृथक गुण, संसर्ग एवं सन्निपात, सप्तधातु वर्णन, तीन मल तथा दोष, धातु एवं मलों की समस्थिति से शरीर पोषण, वर्धन तथा विषम स्थिति में रोगोत्पत्ति होने का वर्णन, छः रसों का वर्णन, रसों के प्रभाव से दोषों का वर्धन एवं शमन, समस्त द्रव्यों के शोधन एवं शमन दो प्रकार, गुणों के 20 भेद, वीर्य के दो भेद शीत एवं उष्ण, तीन प्रकार के विपाक, मधुर, अम्ल, कटु, काल, अर्थ एवं कर्म के हीन, मिथ्या एवं अतियोग से रोगोत्पत्ति होना, रोगों के आश्रय शरीर एवं मन, निज एवं आगन्तुक रोग भेद वर्णन, रोग रोगी परीक्षा विधि, जांगल, आनूप साधारण रूप भूमि देश वर्णन एवं रोगोत्पत्ति के लिए शरीर देश, देशों में साधारण देश को उत्तम बताया है, काल वर्णन, औषध के दो प्रकार शोधन एवं शमन, दोषों के शमन में वात के लिए बस्ति, पित्त के लिए विरेचन तथा कफ के लिए वमन विधि तथा औषध रूप में वात के लिए तैल, पित्त के लिए घी तथा कफ के लिए मधु परमौषध है। चिकित्सा के चारपाद वैद्य, औषध, परिचारक एवं रोगी। चारों के चार गुणों का वर्णन, रोगों की साध्या साध्यता भेद का भी वर्णन किया है अन्त में ग्रन्थ के छः स्थानों के 120 अध्यायों का नाम वर्णन किया गया है।



JAYPEE BROTHERS

JAYPEE BROTHERS

अध्याय 1

# अष्टाङ्गहृदयम्
# सूत्रस्थानम् आयुष्कामीय

सभी प्राणियों के शरीर में फैले हुए तथा सभी कालों में रहने वाले, उत्सुकता, अज्ञान तथा अशान्ति को उत्पन्न करने वाले जो रागादि (राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि) मानसिक रोग एव वात-पित्त तथा कफ की विषमावस्था से उत्पन्न होने वाले शारीरिक रोग तथा जन्म मरणादि स्वाभाविक रोगों को समूल नष्ट करने वाले जो अनादि वैद्य (ब्रह्मादि त्रिदेव) वीत राग भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ।

इसके बाद आयुष्कामीय अध्याय की व्याख्या भगवान आत्रेय, सुश्रुत आदि एवं अन्य महर्षियों के वचनों के आधार पर करने का उल्लेख है।

## ग्रन्थ का मन्तव्य :-

आयुर्वेद का प्रथम उद्देश्य शास्त्रों में स्वस्थ शरीर की रक्षा करना बताया है अतः वाग्भट ने भी सर्वप्रथम आयुष्कामीय अध्याय की व्याख्या करेंगे ऐसा लिखने के साथ अपने विषय की प्रामाणिकता के लिए लिखा कि जैसा भगवान आत्रेय आदि महर्षियों ने कहा था'' इस ग्रन्थ का आधार प्राचीन संहिताएं हैं। महर्षियों के उपदेश का वर्णन कर वाग्भट ने अपने ग्रन्थ को आर्ष श्रेणी का ग्रन्थ सिद्ध किया है। इसका अभिप्राय यह है कि जो कुछ ग्रन्थ में कहा जायेगा वह पूर्व महर्षियों के ही वचन हैं उन्हें काल क्रम से मैं जनमानस के अनुरूप लिख रहा हूं।

## आयुर्वेद की उपयोगिता :-

दीर्घायु को चाहने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि धर्म, अर्थ एवं सुख का साधन देने वाली आयु के लिए आयुर्वेद के उपदेशों के अनुसार अपना आहार-विहार, आचार-विचार एवं व्यवहार बनाये रखें। यही आयुर्वेद के उपदेशों के प्रति आदर करना है।

## आयुर्वेद परम्परा :-

सर्वप्रथम सृष्टि कर्ता पितामह ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण करके दक्ष प्रजापती को इसका उपदेश किया। प्रजापति ने अश्विनी कुमारों को उपदेश किया, अश्विनी कुमारों ने देवराज इन्द्र को तथा इन्द्र ने आत्रेय आदि महर्षियों को वह सम्पूर्ण ज्ञान दिया। उनसे अग्निवेशादि ऋषियों ने पढ़कर अपने अपने तन्त्रों (ग्रन्थों) की रचना की ।

## ग्रन्थ रचना का उद्देश्य :-

पूर्व काल के महर्षियों द्वारा लिखे गये ग्रन्थ अत्यन्त विस्तार से थे तथा विषय इधर उधर बिखरे हुए थे।

JAYPEE BROTHERS

इसलिए उन शास्त्रों में से उपयोगी विषयों का सार भाग लेकर एक साथ एकत्रित करने के लिए मैं इस अष्टाङ्ग हृदय नामक ग्रन्थ की रचना कर रहा हूँ। यह न तो अत्यन्त संक्षेप में है और न ही अधिक विस्तार में है अत: सभी के समझने योग्य हैं। आयुर्वेद के आठों अंगों का हृदय (सार) रूप होने से इसे अष्टाङ्ग हृदय कहा गया है।

## आठ अंगों का नाम वर्णन :-

चिकित्सा के आठ अंग हैं। इन आठ अंगों में समस्त चिकित्सा विषयों का समावेश हो जाने से यह ग्रन्थ अष्टांङ्ग हृदय है। 1. काय चिकित्सा, 2. बाल चिकित्सा 3. ग्रह या भूतविद्या 4. ऊर्ध्वांङ्ग (शालाक्य) चिकित्सा 5. शल्य चिकित्सा, 6. दष्ट्रा (अगद तन्त्र एवं विष विज्ञान) चिकित्सा 7. जरा (रसायन) चिकित्सा, 8. वृष (वाजीकरण) चिकित्सा।

## जानने योग्य :-

1. काय चिकित्सा-रस रक्तादि धातु, वातादि दोष एवं मलों की विकृति से सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न होने वाले ज्वर, रक्तपित्त, अतिसार आदि विकारों के उपचार की या शान्त करने की विधि **काय चिकित्सा** है। शरीर की अग्नि का नाम भी काय है अत: इसी की स्थिति सम रखने की क्रिया काय चिकित्सा है। 2. **बाल चिकित्सा**- इसमें बालकों के लालन पालन, धाय, दूध पीना, दूध के विकार तथा बालकों के अन्य रोगों की निवृति, ग्रह शान्ति आदि विधि का वर्णन होने से इसे **बाल तन्त्र** या **कौमारभृत्य** कहते हैं। 3. मानसिक रोग तथा असुर, गन्धर्व, यक्ष, कृत्या प्रयोग, सूर्यादि ग्रहों से होने वाले रोगों की शान्ति करने की चिकित्सा **ग्रह या भूतविद्या** है। 4. गर्दन से ऊपर के भाग में होने वाले, गले, मुख, नासा, नेत्र एवं कान में होने वाले रोगों की चिकित्सा को **शालाक्य तन्त्र** कहते हैं। 5. शरीर में किसी बाह्य वस्तु के प्रवेश करने, शस्त्राघात या आन्तरिक अंगों को शस्त्र द्वारा निकालना या प्रविष्ट वस्तु को बाहर निकालने की क्रिया होने से इसे **शल्य चिकित्सा** कहा है। 6. सांप आदि के काटने से उत्पन्न रोग की चिकित्सा **दंष्ट्रा** अर्थात **अगद तन्त्र** है। 7. **जरा**-जिस चिकित्सा में शरीर की धातुओं को पुष्ट करने की क्रिया हो वह **रसायन तन्त्र** है। 8. जिस चिकित्सा से व्यक्ति को पुष्ट एवं शुक्रवान बनाया जाय वह **वाजीकरण** चिकित्सा है।

वर्तमान में अध्ययन की सुविधा से आयुर्वेद के अनेक अंगों का विषय रूप में वर्णन किया गया है तथापि वे सभी विषय इन आठ अंगों में ही आ जाते हैं। उनको पृथक करके पढ़ाने से छात्रों को पढने एवं हृदयंगम करने में सुविधा रहती है। विस्तार से देखें तो वर्तमान में आयुर्वेद को 20 विषयों में पढ़ा जा रहा हैं। (देखें लेखक का षोडशांग चिकित्सा)

## वातादि दोष वर्णन :-

संक्षेप में दोष तीन है-वात, पित्त एवं कफ।

## विशेष :-

अपनी विकृत अवस्था में शरीर धातुओं को दूषित करने के कारण इन्हें दोष कहते है। सम अवस्था में

JAYPEE BROTHERS

रहते हुए शरीर की वृद्धि में सहायक होते हैं। यहां संक्षेप में कहने का अर्थ है कि आगे इनके पांच-पांच भेद, स्थान एवं स्थिति का वर्णन किया जायेगा।

## दोषों का शरीर पर प्रभाव एवं इनके स्थान :-

ये वात, पित्त एवं कफ विकृत हो जाय तो शरीर में हानि करते हैं। जब सम अवस्था या अविकृत अवस्था में रहते हैं तो शरीर को स्वस्थ रखते हैं।

ये तीनों यद्यपि सारे शरीर में फैले हुए है तथापि वायु का स्थान हृदय एवं नाभि के नीचे के भाग में, हृदय एवं नाभि के मध्य भाग में पित्त तथा हृदय के ऊपर के भाग में कफ का स्थान बताया गया है।

## दोषों की स्थिति :-

ये वातादि दोष, आयु, दिन, रात्रि एवं भोजन के अन्त में मध्य में एवं आदि में क्रमशः बलवान होते हैं। जैसे बाल अवस्था में कफ, युवावस्था में पित्त तथा वृद्धावस्था में वायु की प्रधानता होती है। इसी प्रकार प्रातः काल में कफ, मध्य दिन में पित्त तथ सांयकाल में वायु प्रबल होती है। रात्रि के प्रथम भाग में कफ, मध्य रात्रि में पित्त तथा रात्रि के अन्तिम प्रहर में वायु की प्रधानता होती हैं। इसी प्रकार भोजन करते समय कफ, भोजन के पचते समय पित्त तथा भोजन पच जाने पर वायु की प्रधानता रहती है। ये तीनों दोष अपने अपने प्रधान काल में प्रबल होने से शरीर को स्वस्थ रखते हैं एवं बढ़ाते भी है तथा विकृति से रोगों को उत्पन्न भी करते हैं।

## दोषों से जठराग्नि की स्थिति :-

उन दोषों में वात की अधिकता से मनुष्यों की जठराग्नि विषम होती है, (खाये हुए आहार को कभी पचाती है कभी नहीं पचाती)। पित्त दोष की अधिकता से जठराग्नि तीक्ष्ण होती है (यही भस्मक रोग का कारण है)। कफ की अधिकता से शरीर की जठराग्नि मन्द हो जाती है (इसमें भी आहार ठीक से नहीं पचता है-भूख भी कम हो जाती हैं)। इन तीनों दोषों की सम अवस्था से जठराग्नि सम होती है। जो भोजन का पाचन ठीक प्रकार से करती है।

## दोषों से कोष्ठ की स्थिति :-

वात की प्रबलता से कोष्ठ क्रूर होता है। पित्त की अधिकता से मृदु, कफ की अधिकता से मध्यम होता है। तीनों की समानता से भी मध्यम रहता है अर्थात् सम ही होता है।

## विशेष :-

कोष्ठ की दृष्टि से भी आहार एवं औषध की मात्रा एवं बल का अनुमान करके प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

## प्रकृति वर्णन :-

जन्म से पूर्व शुक्र एवं आर्तव में होने वाली वात, पित्त एवं कफ की न्यूनाधिकता से मनुष्यों की प्रकृति (स्वभाव) उसी प्रकार बनती है जिस प्रकार विष से विषज कृमि उत्पन्न होते हैं। वायु के कारण (अधिकता

JAYPEE BROTHERS

से) हीन, पित्त की अधिकता से मध्य तथा कफ की अधिकता से उत्तम प्रकृति बनती है। इन तीनों दोषों की सम स्थिति से सम प्रकृति बनती है जो श्रेष्ठ मानी जाती है। दो दो दोषों की अधिकता से द्वन्द्वज प्रकृति बनती है। वात पित्तज, कफ पित्तज तथा वात कफज इन तीनों प्रकृतियों को निन्दित बताया गया है। शरीर में रहते हुए ये दोष कार्य, स्वभाव एवं स्थिति में भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के लिए हानि कर नहीं होते जैसे सर्प, कृमि, कीटादि के शरीर में होने वाला विष सर्पादि को कोई हानि नहीं पहुंचाता।

## वात दोष के गुण :-

रूक्ष, लघु, शीत, खर, सूक्ष्म एवं चञ्चल हैं। (ये गुण क्रमशः एक दूसरे से उत्तरोत्तर कम बल वाले होते हैं)

## विशेष :-

अन्य शास्त्रों में वायु का अनुष्णाशीत गुण भी माना है क्योंकि यह उष्ण के सम्पर्क से उष्ण एवं शीत के सम्पर्क से शीतल होता है।

## पित्त के गुण :-

इषत् (कुछ) स्निग्ध, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, विस्र, सर एवं द्रव है।

## कफ के गुण :-

स्निग्ध, शीतल, गुरु, मन्द, श्लक्ष्ण (मृदु) मृत्स्न (पिच्छिल) तथा स्थिर है।

## संसर्ग एवं सन्निपात :-

अपनी प्राकृतिक स्थिति से क्षीण या बढ़े हुए दो दोषों के मेल का नाम संसर्ग तथा ऐसे ही तीनों दोषों के संयोग को सन्निपात कहा जाता है।

## शरीर की धातु :-

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र ये सातों शरीर की धातुयें हैं। इन्हें दूष्य भी कहा जाता है। विकृत अवस्था में दोष इन्हें दूषित करते हैं इसीलिए इनको दूष्य कहा जाता है। शरीर धारक होने से इन्हें धातु कहा जाता है। (विशेष विवरण आगे दिया है)

## शरीर के मल :-

मूत्र, पुरीष (मल) तथा स्वेद ये शरीर के तीन मल कहे गये हैं।

## दोष धातु एवं मलों की वृद्धि एवं ह्रास का कारण :-

ये सभी दोष, धातु और मल आदि अपने अनुकूल स्वभाव वाले आहार विहार से बढ़ते हैं तथा विपरीत गुण वाले आहार-विहार से क्षय को प्राप्त होते हैं।

JAYPEE BROTHERS

## छः प्रकार के रस विवरण :-

सभी पांच भौतिक द्रव्यों में रहने वाले रस छः प्रकार के हैं- मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय। ये पूर्व क्रम से अधिक बल देने वाले होते हैं। अर्थात् अधिक बल देने वाले मधुर फिर अम्ल, फिर लवण, इससे कम तिक्त उससे कम कटु एवं कषाय हैं। सभी मीठे पदार्थ मधुर रस वाले हैं। इमली, नींबू आदि अम्ल रस प्रधान हैं, सैन्धव, सौंचर आदि लवण रस है, नीम आदि में तिक्त रस हैं। काली मिरच आदि कटु रस हैं तथा हरड़ आदि में कषाय रस हैं। (आगे रसों के 63 भेद बताये हैं जो इनके आपस में मिलने से बनते हैं।)

## दोषों पर रसों का प्रभाव :-

इन छः रसों में पहले के तीन अर्थात् मधुर, अम्ल, लवण, वायु को शान्त करने वाले तथा शेष तीन तिक्त कटु कषाय वायु को बढ़ाने वाले एवं कुपित करने वाले हैं। इसी तरह तिक्त कटु-कषाय कफ को शान्त करते हैं एवं मधुर अम्ल लवण कफ को बढ़ाते हैं। तिक्त कषाय एवं मधुर पित्त को शान्त करते हैं तथ अम्ल, लवण, कटु, पित्त को बढ़ाते हैं। इसी दृष्टि से इनके प्रयोग के समय दोषों का ध्यान रखकर ही उपयोग करना चाहिए।

## द्रव्यों के भेद :-

ये बताये गये सभी रस द्रव्यों में रहते हैं। वे सभी द्रव्य तीन प्रकार के है। कुछ द्रव्य दोषों को शमन करने वाले हैं, कुछ द्रव्य दोषों को कुपित करने वाले हैं तथा कुछ द्रव्य ऐसे हैं जो शरीर को स्वस्थ रखने वाले हैं अर्थात् दोषों की स्थिति को सम बनाये रखते हैं।

## द्रव्यों की वीर्य शक्ति :-

सभी द्रव्यों में उष्ण एवं शीत दो प्रकार के गुणों की उत्कृष्टता या उत्कर्षता से वीर्य दो प्रकार का है। प्रधान रूप से समस्त संसार की स्थिति या स्वभाव दो प्रकार का है उष्ण या शीत। यही बात मनुष्यों के साथ भी हैं। उष्ण प्रकृति वाले या शीत प्रकृति वाले। यही उष्ण एवं शीत वीर्य द्रव्यों की शक्ति कही जाती है।

## द्रव्यों का विपाक :-

समस्त द्रव्यों का उनके गुण, रस एवं प्रकृति के अनुसार पाचन के पश्चात् तीन प्रकार का विपाक होता है मधुर, अम्ल एवं कटु। रसों की दृष्टि से मधुर एवं लवण रस वाले द्रव्यों का विपाक मधुर होता है। अम्ल पदार्थों का विपाक अम्ल तथा तिक्त, कटु, कषाय द्रव्यों का विपाक कटु होता है।

## प्रभाव :

द्रव्य की विशिष्ट शक्ति को प्रभाव कहा गया है। वाग्भट्ट ने इसकी व्याख्या सामान्य प्रत्ययारब्ध एवं विचित्रप्रत्ययारब्ध रूप में की है। (वर्णन आगे अध्याय में दिया है।)

## द्रव्यों के गुण :-

द्रव्यों में 20 प्रकार के गुण होते हैं अर्थात् सभी द्रव्य 20 प्रकार के गुणों वाले होते हैं। किसी में कोई गुण विशेष तो किसी में कोई गुण सामान्य रूप से होता है-गुरु, मन्द, हिम, स्निग्ध, श्लक्ष्ण, सान्द्र, मृदु, स्थिर,

JAYPEE BROTHERS

सूक्ष्म एवं विशद ये दश तथा इनके विपरीत 10 गुण लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, खर, द्रव, कठिन, चल, स्थूल एवं पिच्छिल हैं।

## विशेष :-

यद्यपि आयुर्वेद में द्रव्य गुण की दृष्टि से इन 20 गुणों के अतिरिक्त 21 गुण और बताये हैं जिनका वर्णन प्रसंगवश आगे किया जायेगा। इनमें किस कर्म के लिए कौन सा गुण उपयोगी है इसका वर्णन शास्त्रों में किया है- बृंहण में गुरु, कृश करने या लंघन में लघु, शमन करने में मन्द, शोधन कर्म में तीक्ष्ण, स्तम्भन में हिम या शीत, स्वेदन में उष्ण, क्लेदन में स्निग्ध, शोषण में रूक्ष, रोपण में श्लक्ष्ण, लेखन में खर, प्रसादन में सांद्र तथा विलोडन, (मिलाने या पतला करने) में द्रव, श्लथन में मृदु तथा दृढ़ (मजबूत) करने में कठिन, धारण में स्थिर, प्रेरण (गति) में चल, विवरण में सूक्ष्म, संवरण में स्थूल, चालन में विशद तथा लेपन में पिच्छिल गुण कार्य करता है।

## रोग एवं आरोग्य के कारण :-

काल, अर्थ तथा कर्म का अनुचित संयोग रोग का कारण हैं तथा इनका सम्यक् संयोग स्वास्थ्यकर होता है। अनुचित योग तीन प्रकार का है, हीनयोग, मिथ्यायोग तथा अतियोग तथा काल तीन प्रकार का है शीत, उष्ण एवं वर्षा। अर्था से पंचमहाभूतों के पांच गुण शब्द स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध लेते हैं। शरीर वाणी एवं मन की चेष्टाओं को कर्म कहा जाता है। इनके द्वारा जो हीन, मिथ्या और अतियोग होता है वही रोगों का कारण है। जैसे अपने अपने समय में शीत, वर्षा एवं गर्मी का हीन, मिथ्या, अतियोग हों। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अपने विषयों के ग्रहण करने में हीन, मिथ्या एवं अतियोग करना तथा शरीर, वाणी एवं मन की चेष्टाओं का हीन मिथ्या एवं अतियोग होना ही रोग का कारण होता है।

## रोगोत्पत्ति का सामान्य कारण :-

बताये गये तीन दोषों में से कोई एक या दो अथवा तीनों दोष अपने सम परिमाण से कम या अधिक हो जाय तो जो विकार होता है उसी का नाम रोग है। इन दोषों का अपनी प्राकृतिक अवस्था में सम बने रहना ही स्वास्थ्य है।

## रोगों के भेद :-

रोगों के दो भेद बताये हैं एक निज दूसरा आगन्तुज है। निज रोग शरीर के दोषों की विषम स्थिति से उत्पन्न होकर शरीर एवं मन को पीड़ा पहुंचाते हैं। शस्त्रादि, अभिघात एवं बाह्य कारणो से उत्पन्न रोग आगन्तुज कहलाते हैं।

## रोगों का आश्रय या अधिष्ठान :-

इन दोनों प्रकार के रोगों का आश्रय भी दो प्रकार का होता है एक शरीर दूसरा मन। (ज्वर रक्तपित्त आदि रोगों का अधिष्ठान शरीर एवं मूर्च्छा, मद, सन्यास का अधिष्ठान मन हैं।)

JAYPEE BROTHERS

## मन के दो दोष :-

रजोगुण एवं तमोगुण ये दो मन के दोष कहे गये हैं। (वैसे वातादि दोष भी मन में विकार उपन्न करते हैं किन्तु ये स्वतन्त्र मानस दोष है)।

## विशेष :-

दोनो ही प्रकार के रोगों (निज एवं आगन्तुक) में वातादि दोष विकृत होते हैं। निज में पहले वातादि दोष विकृत होते हैं किन्तु आगन्तुज में पहले आघात आदि की पीड़ा होती है फिर शरीर के वातादि दोष कुपित होते हैं।

## त्रिविध रोगी परीक्षा :-

दर्शन (देखकर), स्पर्शन (छूकर) तथा प्रश्न अर्थात् रोगी को पूछकर, इन उपायों से रोगी की परीक्षा करें।

## रोग परीक्षा के पांच उपाय :-

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय एवं सम्प्राप्ति इन पांच उपायों से रोग की परीक्षा करें। 1. रोग उत्पन्न करने वाले कारणों को निदान कहते हैं। 2. रोग उत्पन्न होने से पहले जो लक्षण दिखाई देते हैं जैसे बड़े व्यक्तियों के आने से पहले इन्तजाम आदि की जो हलचल होती हैं। उनसे उनके कार्यक्रम का अनुमान हो जाता है वे पूर्वरूप हैं। जो लक्षण रोग होने पर साथ साथ रहते हैं वे रूप या लक्षण हैं। गूढ लक्षणों वाले रोग का ज्ञान कराने वाला साधन उपशय है। रोग में कौन सा औषध आहार एवं विहार लाभदायक हैं यह भी उपशय से ज्ञात होता है। रोग कैसे उत्पन्न हुआ किस प्रकार बढ़ कर इस रूप में आया यह इतिहास ही सम्प्राप्ति है।

## भूमि एवं शरीर भेद से देश वर्णन :-

आयुर्वेद में भूमि देश एवं रोग के लिए देह या शरीर देश रूप भेद से दो प्रकार के देश बताये हैं- औषध एवं आहार की दृष्टि से मनुष्यों के शरीर भिन्न-भिन्न प्रकृति (स्वभाव, गुण) वाले होते हैं-

## भौम देश :-

भूमि भेद से देश तीन प्रकार का है। 1. जांगल देश, 2. आनूप देश, 3. एवं साधारण

## जांगल देश :-

यह वायु की प्रधानता वाला होता है।

## आनूप देश :-

यह कफ दोष प्रधान होता है।

## साधारण :-

इसमें वातादि तीनों दोष समान रूप से रहते हैं अथवा दोनों देशों के मिले जुले लक्षण होने से साधारण कहा है।

JAYPEE BROTHERS

## विशेष :-

जिस देश में (भूमि भाग में) पानी, पर्वत बहुत कम हो वहां वायु अपनी रूक्षता से वात प्रधान रोग करती है। इस भूमि भाग के औषध, पशु, पक्षी तथा मनुष्य वात प्रकृति वाले होते है अत: यह **जांगल** है। जहां जल, वृक्षादि, पर्वत बहुत हो, वायु एवं धूप कम हो वहां कफज प्रकृति वाले प्राणी होते हैं औषधियां स्निग्ध होती है वह **आनूप** देश है। जिस भूमि भाग में दोनों देशों के मिले जुले लक्षण मिलते हों वह **साधारण** देश है। इसमें प्राय: तीनों दोष सम अवस्था में रहते है। यह देश स्वास्थ्यकर होता है।

## काल के भेद :-

क्षण, लव, निमेषादि काल गणना वाचक तथा व्याधि की अवस्था के अनुसार काल दो प्रकार का होता है। इनका औषध उपचार में उपयोग किया जाता है। किसी रोग के साम, निराम, मृदु, मध्य आदि अवस्था को देखकर उसी के अनुरूप औषध व्यवस्था की जाती है।

## चिकित्सा भेद (औषध के भेद) :-

संक्षेप में औषध रूप चिकित्सा दो प्रकार की है शोधन औषध एवं शमन औषध। जो औषध कुपित दोषों को शरीर से बाहर निकालकर रोग का शमन करती वह शोधन औषध हैं तथा शमन औषध शरीर के दोषों को अपने अपने स्थान में ही शान्त कर सम करती हैं।

## शारीरिक दोषों की परमौषध :-

शारीरिक दोष वात, पित्त एवं कफ के विकृत होने पर क्रमश: वस्ति, विरेचन एवं वमन से शोधन करना परमौषध है। इन कर्मों के लिए अर्थात् वात में बस्ति के लिए तैल, पित्त में विरेचन हेतु घी एवं कफ में वमन के लिए मधु शमन रूप परम औषध है।

## मानस रोगों की परम औषध :-

हिताहित विवेक करने वाली बुद्धि, धैर्य धारण करना, योग, ध्यान आदि से आत्म ज्ञान होना ये तमोगुण एवं रजोगुण से उत्पन्न मानसिक विकारों की परम औषध है।

## चिकित्सा के चार पाद :-

चिकित्सा के चार पाद (आधार) हैं। 1. भिषक् (वैद्य), 2. द्रव्य अर्थात् औषध द्रव्य, 3. उपस्थाता अर्थात् परिचारक, 4. रोगी अर्थात् आतुर। ये चारों चिकित्सा के आधार हैं। ये प्रत्येक चार चार गुण वाले होते हैं। अत: रोगी की चिकित्सा करते हुए इन 16 गुनों वाले चारों पाद होने पर रोग दूर करने में कठिनाई नहीं होती।

## उत्तम वैद्य के लक्षण :-

वैद्य के चार गुण इस प्रकार बताये हैं - 1. दक्ष अर्थात् चतुर हो, 2. जिसने आयुर्वेद का योग्य गुरु से पूर्ण अध्ययन किया हो, 3. जिसने चिकित्सा कर्म का अभ्यास किया हो एवं देखा हो 4. तथा जो मन वाणी एवं शरीर से पवित्र हो वही उत्तम वैद्य होता है।

JAYPEE BROTHERS

## उत्तम औषध के गुण :-

1. जिस औषध की अनेक कल्पना (चूर्ण, वटी आदि) की जा सकती हो, 2. जो औषध अनेक प्रकार के गुणों वाली हो, 3. जो अपने रस, गुण, वीर्यादि से सम्पन्न हो, तथा 4. देश, काल, प्रकृति आदि के योग्य हो वही उत्तम औषध है।

## परिचारक :-

1. रोगी में स्नेह रखने वाला हो, 2. पवित्र शरीर एवं वाणी वाला हो, 3. सभी क्रियाओं में योग्य हो तथा 4. समय पर बुद्धिमता से कार्य करने वाला हो। वही उत्तम परिचारक है।

## रोगी :-

रोगी 1. धनवान हो (जिसमे कीमती औषध लेने की क्षमता हो) 2. वैद्य का आज्ञाकारी हो, 3. अपने विषय में पूर्ण जानकारी देने वाला हो तथा 4. उत्तम मनोबल वाला अर्थात् धैर्य रखने वाला हों वही रोगी उत्तम चिकित्सा लाभ का अधिकारी होता है।

## साध्यासाध्यादि लक्षण :-

(साध्य एवं असाध्य भेद से रोग दो प्रकार के होते हैं। साध्य रोग दो प्रकार का है-सुख साध्य एवं कृच्छ्रसाध्य, इनमें सुख साध्य उसे कहा जाता है जिसमें सभी प्रकार की औषधियों को रोगी सहन कर सकता हो, युवा हो, जो पुरुष संयम से युक्त हो, रोग मर्म स्थान का न हो, थोड़े कारणों से उत्पन्न हुआ हो, रोग के पूर्व रूप एवं लक्षण अधिक न हों, रोग उपद्रव रहित हो, धातु, देश, ऋतु एवं प्रकृति चारों असमान हो (रोग के अनुकूल न हो), चिकित्सा के चारों पाद गुण युक्त हो, मंगल, सूर्यादि ग्रह रोगी के अनुकूल हो, शुभ राशि वाले हो, रोग एक ही दोष वाला हो तथा उसका मार्ग भी एक ही हो तथा रोग नया हो तो वह सुख साध्य होता है।

## विशेष :-

कुछ प्रतियों में प्रथम श्लोक अधिक हैं।

## कृच्छ्रसाध्य रोग के लक्षण :-

जो रोग शस्त्रादि (अग्नि, क्षार) साधनों से चिकित्सा करने योग्य हो, वह कृच्छ्रसाध्य होता है तथा जो सुखसाध्य लक्षणों के विपरीत लक्षणों वाला हो, देशादि के अनुकूल लक्षणों युक्त हो अर्थात् मिले जुले लक्षणों वाला हो वह भी कृच्छ्रसाध्य होता है।

## याप्य रोग के लक्षण :-

सुख साध्य में बताये गये लक्षणों के विपरीत होने पर पथ्य, औषध, आहार-विहार के अभ्यास से अर्थात् निरन्तर प्रयोग से तथा आयु शेष होने पर सामान्य रूप में चलता रहे तथा पथ्यादि के छोड़ने पर रोग पुनः बढ़ जाता हो वह याप्य कहा जाता है।

JAYPEE BROTHERS

## अनुपक्रम (असाध्य) रोग के लक्षण :-

जो रोग सुखसाध्य व्याधि के लक्षणों के बिल्कुल विपरीत लक्षणों वाला हो वह चिकित्सा करने योग्य नहीं होता है, तथा जिसमें विषयों की प्रबल इच्छा हो, जिसका चित्त मोह युक्त हो (संज्ञानाश), बैचेनी हो, अशान्ति हो, जिस रोग में मृत्यु के लक्षण दिखाई दे वह रोग असाध्य होता है तथा जिसमें नेत्रादि इन्द्रियां नष्ट हो गई हो वह भी असाध्य होता है।

## साध्य लक्षणों वाला होने पर भी चिकित्सा के अयोग्य :-

जो रोगी वैद्य एवं राजा आदि से शत्रुता रखता हो, अथवा वैद्य एवं राजा आदि के जो अनुकूल चरित्र वाला न हो, जो अपने आपसे द्वेष करता हो, जिसके पास चिकित्सा के लिए पर्याप्त धन नहीं हो, जो चिकित्सा के साधनों से रहित हो, जो बहुत घंमडी हो, जिसे चिकित्सा कराने का समय नहीं हो, वैद्य की आज्ञा को नहीं मानने वाला हो, जिसकी आयु क्षीण हो, दूसरों का अपमान करने वाला, क्रोधी, शोक में डूबा हो, डरपोक, कृतघ्न (उपकार को न मानने वाला) हो तथा जो वैद्य न होते हुए भी अपने को वैद्य समझता हो ऐसे रोगियों की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार के रोगियों की चिकित्सा करने में अपयश एवं अपमान ही मिलता है।

**इति वैद्यपति सिंहगुप्त सूनु वाग्भटे विरचितायामष्टाङ्ग हृदय संहितायां सूत्रस्थाने आयुष्कामीयो नाम प्रथमोऽध्याय।**

इसके आगे इस ग्रन्थ के स्थान एवं उनके अध्यायों का वर्णन करेंगे:- इस ग्रन्थ में छः स्थान तथा उनके 120 अध्याय हैं। सूत्र स्थान में आयुष्कामीयादि 30, शारीर में गर्भावक्रान्ति आदि छः, निदान स्थान में सर्व रोग निदानादि 16, चिकित्सा स्थान में ज्वर चिकित्सा आदि 22, कल्पस्थान में वमन कल्पादि 6 तथा उत्तर स्थान में बालोपचरणीयादि 40 अध्याय हैं।

## सूत्र स्थान के अध्याय :-

आयुष्कामीय, दिनचर्या, ऋतुचर्या, रोगानुत्पादनीय, द्रव द्रव्य विज्ञानीय, अन्नस्वरूपविज्ञानीय, अन्नरक्षा, मात्राशितीय, द्रव्यादि विज्ञानीय, रस भेदीय, दोषादि विज्ञानीय, दोष भेदीय, दोषोपक्रमणीय, द्विविधोपक्रमणीय, शोधनादि गण संग्रहणीय, स्नेहविधीय, स्वेद विधीय, वमन विरेचन विधीय, बस्ति विधि, नस्य विधानीय, धूमपान विधीय, गण्डूष विधि, आश्चोतनाञ्जनविधि, तर्पणपुटपाक विधि, यन्त्र विधि, शस्त्र विधि, सिराव्यध विधि, शल्याहरण-विधि, शस्त्रकर्मविधि, तथा क्षाराग्नि कर्मविधानीय। इस प्रकार सूत्र स्थान के तीस अध्याय है।

## शारीर स्थान के अध्याय :-

शारीर स्थान के छः अध्याय इस प्रकार हैं :- गर्भावक्रान्ति, गर्भव्यापद् विधि, अंगविभागशारीरम्, मर्मविज्ञानशारीरम्, विकृति विज्ञानीय तथा दूतादिविज्ञानीय।

## निदान स्थान के अध्याय :-

सर्व रोग निदान, ज्वर निदान, रक्तपित्त-कासनिदान, श्वास-हिक्कानिदान, राजयक्ष्मानिदान, मदात्ययादि

JAYPEE BROTHERS

निदान, अर्शोनिदान, अतिसार-ग्रहणी दोष निदान, मूत्राघात निदान, प्रमेहनिदान, विद्रधिगुल्मनिदान, उदर निदान, पाण्डु शोफ विसर्प निदान, कुष्ठ श्वित्रकृमि निदान, वातव्याधि निदान तथा वातरक्तीय अध्याय इस प्रकार 16 अध्याय निदान स्थान के हैं।

## चिकित्सा स्थान के अध्याय :-

ज्वर, रक्तपित्त, कास, श्वास, हिक्का, राजयक्ष्मा, छर्द्रि, हृद्रोग, तृष्णा, मदात्यय, अर्श, अतीसार, ग्रहणी, मूत्राघात, प्रमेह, विद्रधिवृद्धि, गुल्म उदर चिकित्सा, पाण्डु रोग, श्वयथु, विसर्प, कुष्ठ, श्वित्र, क्रिमि, वातव्याधि तथा वातरक्त चिकित्सा रूप 22 अध्याय चिकित्सा स्थान के है।

## कल्पसिद्धि स्थान के अध्याय :-

वमन कल्प, विरेचन कल्प, वमन विरेचन व्यापत् सिद्धि, वस्तिकल्प, बस्तिव्यापत्सिद्धि तथा छठा द्रव्य कल्प रूप कल्प सिद्धि के 6 अध्याय हैं।

## उत्तर स्थान के अध्याय :-

बालोपचरणीय, बालरोग प्रतिषेधनीय, बालग्रहप्रतिषेधनीय, भूतविज्ञानीय, भूतप्रतिषेधनीय, उन्माद-प्रतिषेधनीय, अपस्मार प्रतिषेधनीय वर्त्मरोगविज्ञानीय, वर्त्मरोग प्रतिषेधनीय, सन्धिसितासित रोग विज्ञानीय, सन्धिसितासित प्रतिषेधनीय, दृष्टि रोगविज्ञानीय, तिमिर प्रतिषेधनीय, लिङ्गनाशप्रतिषेधनीय, सर्वाक्षिरोगविज्ञानीय, सर्वाक्षिरोग प्रतिषेधनीय, कर्णरोग विज्ञानीय, कर्णरोग प्रतिषेधनीय, नासारोगविज्ञानीय, नासारोग प्रतिषेधनीय, मुख रोग, मुखरोगप्रतिषेधनीय, शिरोरोग, शिरोरोग प्रतिषेधनीय, व्रण प्रतिषेधनीय, सद्योव्रणप्रतिषेधनीय, भङ्ग प्रतिषेध नीय, भगन्दर प्रतिषेधनीय, ग्रन्थ्यर्बुदापचीनाड़ी विज्ञानीय, ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदाऽपचीनाड़ीप्रतिषेधनीय, क्षुद्र रोग, क्षुद्र रोग प्रतिषेधनीय, गुह्य रोग, गुह्यरोगप्रतिषेधनीय, विषप्रतिषेधनीय, सर्पविषप्रतिषेधनीय, कीटलूतादि प्रतिषेधनीय, मूषकालर्क प्रतिषेधनीय, रसायनीय, वाजीकरणीय नाम से उत्तर स्थान के 40 अध्याय है।

इस प्रकार छः स्थानों के 120 अध्याय कहे हैं।

**इस प्रकार वैद्यपति सिंहगुप्त पुत्र वाग्भट विरचित अष्टाङ्गहृदय संहिता के आयुष्कामीय नामक सूत्र स्थान का प्रथम अध्याय पूर्ण।**



## आयुष्कामीय प्रथम अध्याय के विषय तालिका में

1. मंगलाचरण
2. धर्म अर्थ काम एवं सुख के साधन आयुर्वेद के उपदेशों का पालन आवश्यक।
3. **अवतरण परम्परा :-**
   ब्रह्मा-प्रजापति-अश्विनी कुमार-इन्द्र-आत्रेयादि महर्षि-अग्निवेशादि शिष्य

JAYPEE BROTHERS

4. **आयुर्वेद के आठ अंग**

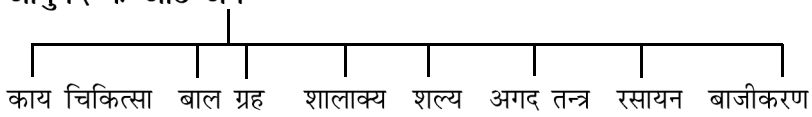


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 5. | **दोष** | वात | पित्त | कफ |
| 6. | **दोष स्थान** | नाभि के नीचे | हृदय नाभि के मध्य में | हृदय से ऊपर |
| 7. | **स्थिति** | वात | पित्त | कफ |
| | **आयु**– | वृद्धावस्था | युवावस्था | बाल्यकाल |
| | **दिन**– | सांयकाल | मध्यदिन | प्रातःकाल |
| | **रात्रि**– | अन्तिम प्रहर | मध्य रात्रि | प्रथम प्रहर रात्रि के |
| | **भोजन**– | जीर्ण होने पर | पचते समय | भोजन करते समय |
| | | **वात** | **पित्त** | **कफ** |
| 8. | **दोषों से अग्नि** | विषम | तीक्ष्ण | मन्द |
| | | | तीनों दोषों से | सम |
| 9. | **दोषों से कोष्ट** | क्रूर | मृदु | मध्यम |
| | | | तीनों दोषों से | सम |

10. **प्रकृति**– वातज पित्तज कफज

**स्वरूप**– हीन मध्यम उत्तम

**द्विदोषज**– वातपित्तज कफपित्तज वातकफज निन्दित

**त्रिदोषज**– तीनों दोषों से-श्रेष्ठ

11. **दोषों के गुण**– **वात**–रूक्ष, लघु, शीत, खर, सूक्ष्म, चल,
**पित्त**–कुछस्निग्ध, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, विस्र, सर, द्रव
**कफ**–स्निग्ध, शीतल, गुरु, मन्द, श्लक्ष्ण, मृत्स्न, स्थिर

12. **संसर्ग**–किन्हीं दो क्षीण दोषों का मेल संसर्ग है।
**सन्निपात**–तीनों क्षीण दोषों का मेल-सन्निपात है।

13. **धातु**– रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र 7 है।

14. **मल**–मूत्र,पुरीष एवं स्वेद (पसीना) इन्हें मल कहा है।

15. **शरीर वृद्धि**– दोष, दूष्य एवं मलों की समता सें।
**ह्रास**– दोष दूष्य एवं मलों की विषमता से।

JAYPEE BROTHERS

16. **रस**– मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय

17. **दोषों की स्थिति**

| | |
|---|---|
| मधुर अम्ल लवण | वात शामक<br>कफ वर्धक |
| कटु तिक्त कषाय | वातवर्धक<br>कफ शामक |
| अम्ल लवण कटु | पित्त वर्धक |
| मधुर तिक्त कषाय | पित्त शामक |

18. **द्रव्य प्रकार** 1. शमन 2. कोपन, 3. स्वस्थहित

19. **गुण**–20 गुरु मन्द हिम स्निग्ध श्लक्ष्ण सान्द्र मृदु स्थिर सूक्ष्म विशद
लघु तीक्ष्ण उष्ण रूक्ष खर द्रव कठिन सर स्थूल पिच्छिल

20. **वीर्य**– द्रव्य की शक्ति–उष्ण एवं शीत

21. **विपाक**– मधुर–अम्ल कटु

22. **रोग**–दोषों की विषमता से रोग होते हैं।

**आरोग्य**– दोषों की समावस्था से आरोग्य होता है।

23. **रोगों के कारण** काल अर्थ कर्म
तीनों के हीन मिथ्या एंव अतियोग से रोग उत्पन्न होते हैं।

24. **रोगों के आश्रय**– शरीर एवं मन

25. **मन के दोष**– रजोगुण, तमोगुण

26. **रोगों के भेद** – निज–आगन्तुज

27. **रोगी परीक्षा**– 1. दर्शन, 2. स्पर्श, 3. प्रश्न

1 2 3 4 5

28. **रोग परीक्षा प्रकार**– निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति

29. **देश**–शरीर देश एवं भूमिदेश

| जांगल | आनूप | साधारण |
|---|---|---|
| वात प्रधान | कफप्रधान | सम (उत्तम) |

JAYPEE BROTHERS

30. **काल के भेद**– काल दो प्रकार का है

1. समय मापक क्षण, काष्ठा मूहूर्त आदि।

2. रोग अवस्था काल (नया या पुराना रोग)

31. **औषध प्रकार**– 1. शोधन विकृत दोषों को बाहर निकालने वाली (पंचकर्म से) 2. शमन स्वस्थानस्थित विकृत दोषों की शामक औषध (औषध एवं पथ्य से)

| **32. दोषों की परमौषध** | **वात** | **पित्त** | **कफ** |
|---|---|---|---|
| **चिकित्सा कर्म** | बस्ति | विरेचन | वमन |
| **परमौषध** | तैल | घृत | मधु |

33. **मानसरोगपरमौषध**–धी, धृति, आध्यात्म, आत्म चिन्तन।

34. **चिकित्सा के चार पाद** 1. वैद्य (चिकित्सक) 2. द्रव्य (औषधादि) 3. परिचारक, 4. रोगी

**35. चारों के चार चार गुण**–

| 1. वैद्य (चिकित्सक) | 2. द्रव्य (औषधादि) | 3. परिचारक, | 4. रोगी |
|---|---|---|---|
| 1. दक्ष (चतुर) | बहुकल्पवाली | 1 अनुरक्त (रोगी से स्नेह रखने वाला) | 1 धनवान |
| 2. शास्त्र मर्मज्ञ | गुण सम्पन्न | 2. शुचि | 2. वैद्य का आज्ञाकारी |
| 3. दृष्ट कर्मा (कर्माभ्यासी) | नवीन एवं योग्यतावाली | 3. दक्ष (कार्यकुशला) | 3. ज्ञापक (रोग के विषय में स्पष्ट बताने वाला) |
| 4. शुचि (स्वच्छ) | उत्तम गुणयुक्त | 4. बुद्धिमान | 4. धैर्यवान |

| **36. रोगों की साध्यासाध्यता** | साध्य | असाध्य |
|---|---|---|
| | सुखसाध्य | कृच्छ्रसाध्य |
| | याप्य | अनुपक्रम (प्रत्याखेय) |

37. कुछ रोगी साध्य होते हुए भी चिकित्सा के योग्य नही होते हैं यथा– चिकित्सक की आज्ञा न मानने वाले, जिसकी आयु क्षीण हो, जो बहुत द्वेषी हो, जिसके पास पर्याप्त धन नहीं हो, जो वैद्य से बैर रखता हो, जो चिकित्सा की उपेक्षा करता है तथा स्वयं को चिकित्सक समझता हो।

JAYPEE BROTHERS

38. **अष्टांगहृदय के स्थान**– 6– सूत्र, शारीर, निदान, चिकित्सा, कल्प, उत्तरास्थान

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **अध्याय** | 30 | 6 | 16 | 22 | 6 | 40 | कुल=120 |

## अध्याय के सम्भावित प्रश्न :

1. आयुर्वेद का प्रयोजन एवं अष्टांङ्ग के नाम लिखें?
2. दोषों के प्रकार स्थान, भेद तथा अग्नि एंव कोष्ठ पर प्रभाव बताइये?
3. अष्टाङ्ग हृदय लिखने का प्रयोजन एवं आयुर्वेद अवतरण बताइये?
4. त्रिदोष के गुण एवं प्रकृति का वर्णन करें?
5. धातु एवं मलों का नाम लिखकर दोष, धातु एवं मलों का क्षय वृद्धि स्वरूप बताइये?
6. रसों का नाम एवं स्वरूप बताते हुए त्रिदोष पर इसका प्रभाव बताइये?
7. वीर्य, विपाक, गुण तथा प्रभाव को स्पष्ट करें?
8. रोग एवं आरोग्य के लक्षण, कारण एवं रोगी रोग परीक्षा के साधन बताइये?
9. शरीर एवं मानस रोगों की परमौषध क्या है?
10. चिकित्सा चतुष्पाद का वर्णन करें?
11. रोगों की साध्यासाध्यता बताते हुए, त्याज्य रोगी का वर्णन करें?
12. निम्नलिखित श्लोकों की व्याख्या करें?

**आयुकामायमानेन धर्मार्थ सुख साधनम्।**
**आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।।**
**कालार्थकर्मणां योगो हीन मिथ्याऽतिमात्रकः।**
**सम्यग्योश्च विज्ञेयो रोगाऽऽरोग्यैककारणम्।।**



JAYPEE BROTHERS

# अध्याय 1 के प्रमुख श्लोक

आयुःकामायमानेन धर्मार्थ सुख साधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।।2।।
कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्रा जरावृषान्।
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता।
वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।।6।।

विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च।
ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः।।7।।

तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक्।
समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा निन्द्या द्विदोषजाः।।10।।

वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्य्ययः।
रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः।।14।।
षड् द्रव्यमाश्रितास्ते तु यथापूर्वं बलावहाः।
तत्राऽद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम्।।15।।
कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते।

गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लक्ष्णसान्द्रमृदुस्थिराः।
गुणाः ससूक्ष्मविशदा विंशतिः सविपर्य्यया।।18।।

कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्याऽतिमात्रकः।
सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम्।।19।।

दर्शनस्पर्शप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम्।
रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाऽऽप्तिभिः।।22।।

शोधनं शमनं चेति समासादौषधं द्विधा।
शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम्।।25।।

दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्म्मा शुचिर्भिषक्।
बहुकल्पं बहुगुणं सम्पन्नं योग्यमौषधम्।।28।।



JAYPEE BROTHERS

for detailed information on ayurveda books, visit our website **www.jaypeebrothers.com,** for detailed information on ayurved

# संहिता अध्ययनम्

**संहिता अध्ययनम् पुस्तक की विशेषता :-**

- संहिता अध्ययन अध्यापन के सूत्र।
- संहिता एवं संहिताकार परिचय।
- अध्यायों का परिचय एवं तालिका।
- उपवास से ओटोपफैगी प्रक्रिया वर्णन।
- ऋतुनिर्माण प्रक्रिया अनुसंधान वर्णन।
- मेन्टल हेल्थ एवं माइक्रोबायोटा।
- चिकित्सकीय आचार संहिता
- अभ्यंग द्वारा उतक पोषण प्रक्रिया।

प्रस्तुत पुस्तक में 'पदार्थ विज्ञान एवं आयुर्वेद इतिहास' के नवीन पाठ्य विषयों को समाहित कर विद्यार्थियों के लिए अध्ययन का मार्ग सरल करने का प्रयास किया गया है।



**आचार्य वैद्य ताराचन्द शर्मा** एम.डी. स्व. पं. रामदत्त जी शर्मा के सुपुत्र एवं मूल निवासी, बिसाऊ, जिला झुन्झुनू ;राजस्थानद्ध, अपना प्रारम्भिक अध्ययन समाप्त कर १९६० में जयपुर आ गए। इन्होंने स्व. वैद्य मुरारि मिश्र एवं वैद्य रामकृष्ण शर्मा दण्ड के सानिध्य में कर्माभ्यास के साथ आयुर्वेद अध्ययन करते हुए आयुर्वेदाचार्य उत्तीर्ण किया। १९६७ से श्री जगदम्बा आयुर्वेद कालेज, जयपुर, में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया एवं १९७९ तक हरियाणा के विभिन्न महाविद्यालयों में आचार्य पद पर रहे। १९८० में पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, में एम.डी. उपाधि प्राप्त कर मूलचन्द हास्पिटल, नई दिल्ली, में वरिष्ठ अनुसंधन अधिकारी के पद पर नियुक्त हुए। पं. हरिदत्त शास्त्री एवं वैद्य मुकुन्दी लाल द्विवेदी तथा वैद्य शिव कुमार मिश्र जी के निर्देशन में आयुर्वेद के प्रत्येक विषय पर विश्वकोष-स्तर का साहित्य संकलन किया। इसका एक भाग 'पंचकर्म चिकित्सा' चौखम्भा से प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने अपने अध्यापन काल में 'आयुर्वेद का इतिहास', 'पदार्थ विज्ञान', 'शरीर रचना', 'क्रिया शरीर', 'द्रव्य गुण', 'रस शास्त्र', 'शल्य विज्ञान', 'षोडशार्धै चिकित्सा विज्ञान' आदि विभिन्न विषयों पर पाठ्यक्रमानुसार पुस्तकें लिखी हैं एंवम् संस्कृत विषय पर 'संस्कृत ज्ञान मंजरी', 'आयुर्वेदीय सुभाषित' एवं 'कुमारसम्भव' का अनुवाद किया है। इन्होंने केन्द्रीय आयुर्वेद विज्ञान अनुसंधान परिषद् (CCRAS) के पाँच मूल ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया जिनमें अभिनव चिन्तामणि ;चक्रपाणि दास कृतद्ध का अनुवाद विशेष है। 'वृहद् योग तंरगिणी, भावप्रकाश निघण्टु' एवं आंष्टार्धै हृदय की टीका की जा रही है व आनन्दकन्द, भिषक्चक्रवित्तोत्सव आदि पाँच ग्रन्थों पर विद्यावारिधि (Ph.D.) करने वाले छात्रों का निर्देशन किया है। इनके २५० लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं तथा विभिन्न विषयों पर अनेक संगोष्ठियों (राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय) में पत्रा-वाचन किया है। ये दिल्ली के जाने-माने सिद्हस्त चिकित्सक एवं नाड़ी विशेषज्ञ हैं, विभिन्न सरकारी, अर्धसरकारी एवं स्वायत संस्थानों के सदस्य हैं एंवम् अनेक पत्रा-पत्रिकाओं के सलाहकार तथा महासम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक रहे हैं। आयुर्वेद छात्रों में विगत ३० वर्षों से लेखक के रूप में प्रसिद्व व्यक्तित्व के धनी हैं। आपने अनेक संस्थानों से अनेकों मानक उपाधियाँ प्राप्त की है। जिनमें 'राजस्थान श्री', आयुर्वेद विश्व गौरव, शताब्दी महर्षि, प्राणाचार्य, आयुर्वेदवारिधि, आयुर्वेद महाप्राण, आयुर्वेद शिरोमणि, आदि विशेष हैं। राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ ने आपको रत्न सदस्यता (Fellowship) प्रदान की है। दिल्ली संस्कृत अकादमी ने आयुर्वेद विद्वान के रूप में आपको ५१ हजार रूपयों का पुरस्कार प्रदान किया है एंवम् उत्तर प्रदेश आयुर्वेद यूनानी अकादमी द्वारा 'द्रव्यगुण' पुस्तक पुरस्कृत हो चुकी है।

वर्तमान में लेखक राष्ट्रीय विद्यापीठ के राष्ट्रीय गुरु के रूप में छात्रों को आयुर्वेद चिकित्सा-कौशल का ज्ञान दे रहे हैं तथा अखिल भारतीय आयुर्वेदिक महासम्मेलन के मन्त्री एवं इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा के अध्यक्ष हैं।

आपका आयुर्वेदीय षोडशार्धै चिकित्सा विज्ञान तीन भागों में प्रकाशित हुआ है जिसमें BAMS (आर्युवेदाचार्य) के सभी विषयों का वर्णन पाठ्यक्रमानुसार किया गया है।

*Printed in India*

**Available at all medical bookstores**
**or buy online at www.jaypeebrothers.com**

**JAYPEE BROTHERS**
**Medical Publishers (P) Ltd.**
**EMCA House, 23/23-B, Ansari Road,**
**Daryaganj, New Delhi - 110 002, INDIA**
**www.jaypeebrothers.com**

Join us on facebook.com/JaypeeMedicalPublishers

Shelving Recommendation
**AYURVEDA**

ISBN 978-93-5696-386-3

9 789356 963863